नकली राष्ट्रवादियों की असली जन्मकुण्डली

गौरव

दुनिया की हर प्रजाति के फासीवादियों की तरह हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवादियों की प्रचार-रणनीति भी सफेद झूठ पर टिकी है। हिटलर के कुख्यात प्रचार मंत्री गोयबल्स की प्रचार शैली का तो सूत्रवाक्य ही था कि एक झूठ को सौ बार दुहराओ तो वह सच में बदल जाता है। लेकिन 'स्वदेशी' फासीवादियों ने तो इस गोयबल्सवादी प्रचार शैली को भी मात दे दी है और अनेक सफेद झूठों को हिन्दू जनमानस में इस कदर पैठा दिया है कि इसके दिलों में मुसलमानों और सभी अल्पसंख्यक समुदायों के प्रति गहरी नफरत भरी हुई है। इन सफेद झूठों की सूची इतनी बड़ी है कि पत्रिका के सीमित पन्नों में उन सबकी पोल खोलना संभव नहीं। यहां संघ परिवार द्वारा प्रचारित कुछ ऐतिहासिक सफेद झूठों की पोल खोलने और इनके असली राजनीतिक चरित्र एवं सांगठनिक कार्यशैली के बारे में कुछ रोशनी डालने से ही संतोष करना पड़ेगा।

किस अतीत का गौरव गान?

अपने देश और समाज के भविष्य को सुन्दर बनाने की कामना रखने वाला हर प्रगतिशील समाज अपने अतीत से, इतिहास से हमेशा ही सीखता है। लेकिन यह भी सही है कि अतीत की ओर देखने वाली दृष्टि उज्जवल भविष्य कामना और नीर-क्षीर विवेक से सम्पन्न होनी चाहिए। न अतीत के प्रति मिथ्याभिमान होना चाहिए और न ही सम्पूर्ण नकार का भाव होना चाहिए। अतीत के प्रति मोहाशक्ति, चाहे वह कितना भी गौरवशाली न रहा हो, वर्तमान और भविष्य को उज्ज्वल बना ही नहीं सकता। लेकिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विभिन्न शाखाओं -प्रशाखाओं के प्रचारक- किस गौरवशाली अतीत का महिमामण्डन करते हैं? अतीत के किन मूल्यों मान्यताओं, संस्थाओं, आचार-व्यवहार को वे आदर्श बनाकर प्रस्तुत करते हैं।

संघ परिवार के भारत अतीत की प्रगतिशील मनीषा का उपासक नहीं है। वह अतीत के उज्ज्वल पक्षों को नहीं उभारता, अन्धेरों का स्तुतिगान करता है। उसकी दृष्टि सतत प्रवाहमान निर्मल सरिता पर नहीं टिकती, ठहरे हुए सड़कर बजबजा रहे कुओं-पोखरों-गड़हियों पर ही ठहरती है।

वैदिक सभ्यता का गुणगान करते नहीं थकता संघ परिवार। लेकिन भारतीय सभ्यता के इस उषाकाल में उसे प्रकृति से मानव का आत्मीय साहचर्य आदिम समष्टि की सृजनशीलता के दर्शन नहीं होते जिससे प्रेरणा लेकर मानव और प्रकृति के अलगाव को चरम पर पहुंचा देने वाली बाजार की शक्तियों के खिलाफ मानव ऊर्जा को केन्द्रित किया जा सके और व्यक्तिवाद एवं सामाजिक अलगाव को दूर करने के लिए समष्टि की बुनियाद पर नये ऊर्जावान समाज की रचना की जा सके। संघ परिवार वेदों से वैदिक कर्मकाण्ड सीखता है। वैज्ञानिक उत्कर्ष के आज के युग में वह वैदिक गणित और ज्योतिष विद्या को सीखता है। वैदिक गणित और ज्योतिष प्राचीनकालीन भारतीय मनीषा का अद्भुत प्रस्फुटन था। यह गर्व की बात तो हो सकती है लेकिन आधुनिक गणित एवं विज्ञान की आरंभिक कक्षाओं का विद्यार्थी भी यह अच्छी तरह समझ सकता है कि आज के समय में इसकी उपयोगिता की बात करना निरी मूढ़ता के अलावा और कुछ नहीं हो सकता।

संघ परिवार अतीत से सीखने के नाम पर अमानवीय वर्ण व्यवस्था का पैरोकार है। जिसमें शूद्र और अन्त्यज जातियों को पशओं से भी नीचा समझा जाता था। चुनावी राजनीति की मजबूरियों के चलते भले ही संघ परिवार की राजनीतिक शाखा भाजपा दलितों को आरक्षण दने का अवसरवादी समर्थन करती हो, लेकिन वस्तुत: आज भी तहे दिल से वह वर्ण व्यवस्था का हिमायती है। इसीलिए वह जाति व्यवस्था के उन्मूलन की बात नहीं करता, सामाजिक समरसता की बात करता है।

प्राचीन काल की विदुषी महिलाओं का उल्लेख गर्व के भाव से संघ परिवार के सदस्य किया करते है। लेकिन स्त्रियों के प्रति उनका वास्तविक नजरिया क्या है? संघ परिवार के लिए आदर्श स्त्री की पहचान यह है कि उसकी अपनी कोई पहचान न हो। मूक पशुओं सी सर्वसहा, नीति-अनीति के विचार से परे पति चरणों की दासी, चूल्हे-चौखट की चारदीवारी में कैद एक गुलाम हो, जिसका एकमात्र काम पुरुष को तुष्ट करना-हृष्ट-पुष्ट बच्चे पैदा करना और धार्मिक कर्मकाण्डों में अपने पति का साथ देना हो। प्राचीन भारत के 'गौरवशाली' अतीत के इन ढिंढोरचियों के

नजरिये से अगर अतीत को देखा जायेगा और प्रेरणा ली जायेगी तो हमारा वर्तमान और भविष्य उन्हीं अन्धेरी गुफाओं में भटकता रहेगा, जहां हम आज खड़े कर दिये गये हैं जहां धर्मध्वजा उठाये और 'जयश्रीराम' की हुकारों के साथ हजारों इन्सानों को बर्बरता से कत्ल कर दिया जाता है, अजन्मे बच्चों की भ्रूण हत्या कर दी जाती है और सामूहिक बलात्कार होते हैं। भारत के अतीत में बहुत कुछ सीखने लायक है- अन्ध आस्था, दासवृत्ति और राजभक्ति के खिलाफ विवेक, समता के आदर्श और अन्याय के खिलाफ विद्रोह की परम्परा, तथा और भी बहुत कुछ। पर मतान्ध, धर्मान्ध और वर्णान्ध दृष्टि और पाशविक वृत्ति से अतीत को देखने पर इसे नहीं सीखा जा सकता। इसके लिए 'सर्वेभवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया:' की लोकमंगलहारी भावना चाहिए, परपीड़क लोकभ्रष्टकारी उन्माद नहीं।

संघ परिवार भारत के अन्धेरे अध्यायों से और क्या-क्या सीखता है और शिशु मन्दिरों से लेकर शाखाओं तक 'गौरवशाली अतीत' के कौन-कौन से पन्ने खोले जाते हैं, यह अलग से विस्तृत चर्चा का विषय है। इस टिप्पणी में फिलहाल इतना ही।

कैसा स्वदेशी? कब से स्वदेशी?

जब से भूमण्डलीकरण का दौर शुरू हुआ है तब से संघ परिवार रह-रह कर स्वदेशी-स्वदेशी की टेर लगाता रहता है। संघ परिवार के सज्जनों आचार्यो! तुम स्वदेशी कब से हो गये? तुम्हारा तो न विचार कभी स्वदेशी रहा है और न ही आचार। तुम्हारी पैदाइश और जन्मकुण्डली से अनजान व्यक्तियों को इस झूठे आत्ममहिमामण्डन से भरमाने की यह कला भी तुमने कहां से सीखी?

अनेक प्रामाणिक दस्तावेजों से यह साबित किया जासकता है कि संघ परिवार की वैचारिक पैदाइश ही विदेशी विचारधारा के साथ 'नियोग-क्रिया' का फल है। यह सिर्फ ऐतिहासिक संयोग नहीं था कि जिस काल में जर्मनी में हिटलर और इटली में मुसोलिनी का उदय हो रहा था, ठीक उसी काल में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना (1925 में नागपुर में) हुई थी। खुद आर.एस.एस. के सर्वोच्च नेतृत्व ने हिटलर की नाजी पार्टी (नेशनल सोशलिस्ट जर्मन वर्कर्स पार्टी का संक्षिप्त रूप) और इटली की फासीवादी पार्टी (इतालवी भाषा में 'फासी' शब्द संघ का पर्यायवाची होता है) की प्रेरणा को अपने लेखन में स्वीकारा था। डा. केशवराव बलीराम हेडगेवार के साथ आर.एस.एस. के पांच प्रमुख संस्थापकों में से एक डॉ. वी.एस.मुंजे ने इटली जाकर मुसोलिनी से मुलाकात तक की थी और वैचारिक प्रसाद लेकर स्वदेश वापस लौटे थे। संघ परिवार का 'राष्ट्रवाद', मुसलमानों सहित सभी अल्पसंख्यक समुदायों के प्रति घृणा और हिन्दू जाति के प्रति श्रेष्ठताबोध, उसका सांगठनिक ढांचा-सब कुछ नाजी पार्टी और फासीवादी पार्टी से आश्चर्यजनक मेल खाता है। यहां तक कि संघ के स्वयंसेवकों का गणवेश (यूनीफार्म) भी स्पेनी और इतालवी फासिस्टों से प्रेरित है। इटली के फासिस्ट काली कमीज पहनते थे। इसी की नकल करते हुए

हेडगेवार ने संघ के कार्यकर्ताओं को काली टोपी पहनायी। दुनिया में अगर इटली के फासिस्टों की पहचान 'काली कमीज' और स्पेन के फासिस्टों की पहचान 'भूरी कमीज' वालों के रूप में बनी थी तो संघियों में अपनी पहचान 'खाकी निकर' और 'काली टोपी' वालों के रूप में कायम की।

अब आइये, संघ परिवार के 'राष्ट्रवादी' 'स्वदेशी' के आर्थिक चिन्तन और राजनीतिक अवधारणाओं की असलियत जानने से पहले उसके प्रमुख सिद्धान्तकार माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर उर्फ गुरूजी की 'अनमोल' लेखनी और वाणी से कुछ अंश उद्धृत कर हिटलर और मुसालिनी की विचारधारा और कारगुजारियों में अद्भुत मेल देखें।

हिटलर-मुसोलिनी से अद्भुत मेल

हेडगेवार आर.एस.एस. के प्रमुख संस्थापक जरूर थे पर 'सिद्धान्तकार' का दर्जा तो गोलवलकर को ही दिया जा सकता है। 1939 में 77 पृष्ठों वाली गोलवलकर की पहली (शायद एकमात्र) किताब छपी -'वी,ऑर अवर नेशनहुड डिफाइण्ड'। आगे लकर 'बंच ऑफ थॉट्स' के नाम से उनके भाषणों आदि का एक संकलन तथा छह खण्डों में 'श्री गुरुजी समग्र दर्शन' भी छपे लेकिन योजनाबद्ध ढंग से खुद लिखी गयी गुरुजी की अकेली किताब 'वी, ऑर अवर नेशनहुड...' ही है। एक समय गोलवलकर की यह किताब संघियों के लिए गीता के समान थी, लेकिन यह पोलपट्टी खुल गयी कि आर.एस.एस. के विचारों और हिटलर-मुसोलिनी के विचारों में मेल है और इस संगठन को हिटलर के 'स्टॉर्म ट्रूपर्स' (तूफानी दस्तों) की तरह के संगठन के रूप में खड़ा करने की कुयोजना है तो खुद गोलवलकर ने ही इस किताब का प्रकाशन बन्द करवा दिया।

जिस वर्ष गोलवलकर की यह पुस्तक प्रकाशित हुई उसी वर्ष हेडगेवार ने उन्हें सरकार्यवाह घोषत किया था। हेडगेवार खुद अपनी सभाओं में इस पुस्तक से हवाले दिया करते थे। इस पुस्तक के एक अंश में हिटलर के जर्मनी का गुणगान देखिए:

"आज दुनिया की नजरों में सबसे ज्यादा जो दूसरा राष्ट्र है, वह है जर्मनी। यह राष्ट्रवाद का बहुत ज्वलन्त उदाहरण है। आधुनिक जर्मनी कर्मरत है तथा जिस कार्य में वह लगा हुआ है, उसे काफी हद तक उसने हासिल भी कर लिया है... पितृभूमि के प्रति जर्मन गर्वबोध, जिसके प्रति उस जाति का परम्परागत लगाव रहा है, सच्ची राष्ट्रीयता का जरूरी तत्व है। आज वह राष्ट्रीयता जाग उठी है तथा उसने नये सिरे से विश्वयुद्ध छेड़ने की जोखिम उठाते हुए अपने "पुरखों के क्षेत्र" पर एकजुट, अतुलनीय, विवादहीन, जर्मन साम्राज्य की स्थापना का ठान लिया है।..."

(गोलवलकर, पूर्वोक्त पृष्ठ 34-35)

आगे देखिये:

"... अपनी जाति और संस्कृति की शुद्धता बनाये रखने के लिए जर्मनी ने देश से सामी जातियों-यहूदियों का सफाया करके विश्व को चौंका दिया है। जाति पर गर्वबोध यहां अपने सर्वोच्च रूप में व्यक्त हुआ है। जर्मनी ने यह भी बता दिया है कि सारी सदिच्छाओं के बावजूद जिन जातियों और संस्कृतियों के बीच

मूलगामी फर्क हों, उन्हें एक रूप में कभी नहीं मिलाया जा सकता। हिन्दुस्तान में हम लोगों के लाभ के लिए यह एक अच्छा सबक है (गोलवलकर, पूर्वोक्त, पृ.35)।"

कितना अनोखा मेल है हिटलर के वृहत्तर जर्मनराष्ट्र और 'हिन्दू राष्ट्र' की संघ परिवार की अवधारणाओं, राष्ट्रीय गर्वबोध में। क्या संघ परिवार का अफगानिस्तान, इरान से लेकर पाकिस्तान, भारत, बर्मा, श्रीलंका, नेपाल आदि सभी देशों को मिलाकर बनने वाला 'अखण्ड भारत' का नक्शा उसी ढंग से नहीं बनाया है जिस तरह हिटलर ने आस्ट्रिया, प्रशा, बवारिया तथा चेकोस्लोवाकिया आदि राज्यों को मिलाकर बनाया था और जिस तरह गुजरात में मुसलमानों का सफाया अभियान चला है क्या वह जर्मनी में यहूदियों के सफाये की याद नहीं दिलाता।

संघ परिवार के 'हिन्दू राष्ट्र' की एक और झलक देखिये:

"... जाति और संस्कृति की प्रशंसा के अलावा मन में कोई और विचार न लाना होगा, अर्थात हिन्दू राष्ट्रीय बन जाना होगा और हिन्दू जाति में मिलकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को गंवा देना होगा, या इस देश में पूरी तरह से हिन्दू राष्ट्र की गुलामी करते हुए, बिना कोई मांग किये, बिना किसी प्रकार का विशेषाधिकार मांगे, विशेष व्यवहार की कामना करने की तो उम्मीद ही न करें: यहां तक कि बिना नागरिकता के अधिकार के रहना होगा। उनके लिए इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं छोड़ना चाहिए। हम एक प्राचीन राष्ट्र हैं। हमें उन विदेशी जातियों से जो हमारे देश में रह रही हैं उसी प्रकार निपटना चाहिए जैसे कि प्राचीन राष्ट्र विदेशी नस्लों से निपटा करते हैं।"

(गोलवलकर, वही, पृष्ठ 47-48)

आगे भी:

"सिर्फ वे लोग ही राष्ट्रवादी देशभक्त हैं जो अपने हृदय में हिन्दू जाति और राष्ट्र की शान बढ़ाने की आकांक्षा रखते हुए इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। अन्य सभी या तो राष्ट्रीय हित के लिए विश्वासघाती और शत्रु हैं या नरम शब्दों में कहें तो मूर्ख हैं।"

(गोलवलकर, वही, पृ. 44)

गोलवलकर के इन विचारों पर टिप्पणी करने की कोई जरूरत नहीं। अशोक सिंघल, प्रवीण तोगड़िया और संघ के अन्य धुरन्धर स्वयंसेवकों के भाषणों-बयानों से इसकी तुलना कीजिए, संघ परिवार के 'राष्ट्रवाद' का असली चेहरा खुद-ब-खुद सामने आ जायेगा।

अब आइये, संघ परिवार के 'स्वदेशी' आर्थिक चिन्तन और राजनीतिक अवधारणाओं की असलियत जानें। संघ परिवार तो शुरू से ही अमेरिकी किस्म के पूंजीवादी मॉडल और अमेरिकापरस्त विदेश नीति का समर्थक रहा है। संघ परिवार की पहली राजनीतिक शाखा जनसंघ और उसके नये अवतार के रूप में उभरी भारतीय जनता पार्टी तो हमेशा से ही खुले बाजार की नीतियों और विदेशी पूंजी की मदद से देश के आर्थिक विकास की हिमायती रही है। जनसंघ के संस्थापक अध्यक्ष श्यामा प्रसाद मुखर्जी नेहरू के तथाकथित समाजवादी मॉडल यानी राजकीय पूंजीवाद के मॉडल के कटु आलोचक रहे हैं। आज भी जिस बेशर्मी के साथ केन्द्र में सत्तारूढ़ भाजपा आर्थिक उदारीकण- निजीकरण की नीतियों को लागू कर रही है, विदेशी पूंजी को रिझाने के लिए बेशर्म पतुरिया जैसा नाच रही है क्या इसके बाद भी कोई भ्रम बचता है। जनसंघ, स्वतंत्र पार्टी और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के लोग नेहरू की आर्थिक नीतियों ही नहीं गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति के भी धुर विरोधी रहे हैं। अपनी अमेरिकापरस्ती को आर.एस.एस. के भोंपू 'आर्गनाइजर' ने 3 अप्रैल 1950 के अंक के सम्पादकीय में इन शब्दों में बेहयाई से स्वीकार किया था।

"अमेरिका भारत की मदद के लिए उतना उत्साही नहीं है क्योंकि भारत कम्युनिज्म के खिलाफ उसके विश्वसंघर्ष में सहयोग नहीं कर रहा है।... हम भारत के लोग अपनी प्राचीन उदार परम्पराओं के चलते आंग्ल-अमरीकी लोगों से अधिक निकट हैं। .. ऐसा प्रतीत होता है कि अमरीका के साथ जुड़कर ही एक राष्ट्र के रूप में हम अपने पूर्ण स्थान को प्राप्त कर पायेंगे।"

यह तो पुराना उदाहरण हुआ। जब से भाजपा सरकार सत्ता में बैठी है तबसे देशी-विदेशी पूंजी की सेवा और नंगी अमेरिकापरस्ती की वह नयी-नयी मिसालें कायम कर रही है। सरकार ने जनता की गाढ़ी कमाई से खड़े किये सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों को देशी-विदेशी पूंजीपतियों को औने-पौने दामों पर बेच देने के लिए अरुण शोरी के नेतृत्व में बकायदा एक विनिवेश मंत्रालय खोल रखा है। संघ परिवार के 'स्वदेशी' का नारा

सिर्फ और सिर्फ ढकोसला है, जनता को भरमाने के लिए। स्वदेशी जागरण मंच नामक दुकान संघ परिवार ने सिर्फ इसलिए खोल रखी है कि जनता के सामने असली चेहरा छुपाया जा सके और जनता के गुस्से की धार को मोड़ा जा सके।

संघ परिवार का सांगठनिक ढांचा और उसकी कार्यप्रणाली हिटलर-मुसोलिनी की पार्टियों से हूबहू मेल खाती है। जिस प्रकार मुसोलिनी की पार्टी में किसी नये सदस्य के दाखिले के समय 'ड्यूस' (नेता) के नाम पर यह शपथ ली जाती थी कि वह बिना कोई प्रश्न किये नेता के आदेश का पालन करेगा, ठीक उसी तर्ज पर आर.एस.एस. में नये सदस्यों की भर्ती होती है। संघ के सरसंघ चालक के प्रति पूर्ण और प्रश्नहीन निष्ठा संघ की सदस्यता की पहली शर्त है। कोई जनवाद नहीं, सदस्यों को कोई अधिकार नहीं। पूरा सांगठनिक ढांचा चालकानुवर्ती (कमाण्ड स्ट्रक्चर) होती है। सबसे ऊपर सरसंघ चालक होता है। इसके बाद सरकार्यवाह होता है जिसे सरसंघ चालक नियुक्त करता है और जो अगला सरसंघ चालक होता है। इसके बाद नागपुर कार्यालय में अत्यन्त परखे हुए पूरा वक्ती चुनिन्दा कार्यकर्ताओं को लेकर अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल बनता है। इसी मंडल से विभिन्न शाखाओं के प्रमुखों, बौद्धिक शिक्षण प्रमुखों या प्रचारकों की नियुक्ति होती है। निचले स्तर के तमाम विभागों में प्रचारक ही मुख्य होता है, उसकी बात पत्थर की लकीर होती है। अपने से नीचे के कार्यकर्ताओं के प्रति उनकी कोई जवाबदेही नहीं होती। वह सिर्फ अपने से ऊपर के जिला, प्रान्त या

केन्द्रीय प्रचारकों के प्रति जवाबदेह होता है।

सांगठनिक ढांचे के बाद अब संक्षेप में आर.एस.एस. की कार्यप्रणाली की चर्चा भी।

नाजी पार्टी की तरह आर.एस.एस. का भी कोई वास्तविक संविधान नहीं है। 1948-49 में संघ पर नेहरू सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगाने के बाद गोलवलकर ने एक फर्जी संविधान बनाकर गृह मंत्रालय को सौंपा था, जिसके बाद उस पर प्रतिबन्ध हटा लिया गया था। इस संविधान में संगठन के उद्देश्यों सदस्यता की शर्तों, चुनाव आदि के बारे में जो बातें लिखी गयी थीं वे आर.एस.एस. के घोषित उद्देश्यों और कार्यप्रणाली से मेल नहीं खाती थीं। प्रतिबन्ध उठ जाने के बाद इस संविधान को संघियों ने रद्दी की टोकरी में फेंक दिया और अपने असली चरित्र के अनुसार आचरण में जुट गये।

संघ परिवार की कार्यप्रणाली के अन्य तमाम तत्व भी हिटलर-मुसोलिनी की कार्यप्रणाली से हूबहू मिलते हैं। सिर्फ एक उदाहरण काफी है। हिटलर की रैलियों और संघ परिवार की रैलियों के आयोजन के तरीके बिल्कुल एक से हैं। हिटलर जब भी जनता के बीच जाता था तो नाजी पार्टी हमेशा एक अजीब प्रकार का नाटकीय माहौल तैयार किया करती थी श्रोताओं की पहली कतार में नाजी पार्टी के तूफानी दस्ते के लोग रहते थे और आम दर्शक को नेता से काफी दूर रखा जाता था। ठीक इसी तरह आर.एस.एस. की रैलियों में भी मंच के सामने सबसे पहले दूर-दूर तक काफी अधिक स्थान घेरकर आर.एस.एस. के वर्दीधारी स्वयंसेवक बैठ जाते हैं और आम लोग दूर से उसके संरसंघ चालक की धुंधली-सी झलक भर ले पाते हैं। जिस तरह हिटलर के भारी-भरकम उत्तेजक शब्दों से भरे भाषण से उसके चारों ओर थोथी 'वीरता' और 'शौर्य' का प्रभामण्डल तैयार किया जाता था, ठीक उसी तर्ज पर संघ के नेता के भारी-भरकम थोथे आलंकारिक शब्दों से भरे भाषणों से उसकी छवि को हिन्दुओं के वीर सेनानी की तरह प्रस्तुत किया जाता है।

हिटलर की प्रचार-शैली का एक नमूना देखिये और संघ परिवार के भाषण वीरों की शैली से तुलना करिये। अपनी पार्टी के कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए वह कहता है:

"युद्ध के प्रारंभ के लिए मैं एक प्रचार-मूलक तर्क तैयार करूंगा। कभी मत सोचो के वह सच है या नहीं, विजेता से बाद में कोई यह नहीं पूछेगा कि उसने सच कहा था या नहीं। युद्ध छेड़ने और चलाने में सहीपन का कोई मतलब नहीं है, सिर्फ जीत का मतलब है।"

क्या अब भी कोई सन्देह है कि संघ परिवार के सांगठनिक ढांचे और उसकी कार्यप्रणाली कहां से उधार ली गयी है। यह भारतीय संस्कृति के किस अध्याय से ली गयी है?

साफ है कि 'स्वदेशी का' ढिंढोरा पीटने वालों की आत्मा विदेशी है, उनका शरीर विदेशी रक्त-मज्जा से बना है, उनका चाल-चेहरा और चरित्र सब कुछ हिटलर-मुसोलिनी की विदेशी अवधारणाओं से बना है। फिर किस मुंह से संघ वाले सोनिया गांधी को इटली की बेटी कह कर देश का नेतृत्व करने के अयोग्य होने का प्रचार करते हैं। संघीजनों, शासन किसी व्यक्ति से नहीं चला करता। तय इस बात से होता है किस वर्ग की राज्यसत्ता है? जिस वर्ग की राज्यसत्ता होती है उसकी नमुाइन्दगी करने वाली राजनीतिक पार्टी ही शासन चलाती है। जैसे कि आज देश की राजसत्ता देश के पूंजीपति वर्ग के हाथ में है। उसके हित साम्राज्यवादियों के साथ घुले-मिले हैं। इसीलिए केन्द्र की भाजपा सरकार देशी-विदेशी पूंजीपतियों के हित में शासन चला रही है। सोनिया गांधी भी शासन की बागडोर सम्भालेंगी तो देशी पूंजीपतियों और तमाम साम्राज्यवादी देशों के हितों की ही चौकीदारी करेंगी। क्योंकि उनकी पार्टी कांग्रेस की भी यही नीति है। लेकिन तुम किस नैतिक हक से स्वदेशी-स्वदेशी चिल्लाकर गला फाड़ रहे हो। तुम तो हिटलर-मुसोलिनी के मानस पुत्र हो, इटली की सड़ांध के पिस्सू हो, इटली के इतिहास के सबसे अन्धेरे पन्नों के दीमक हो। तुम को शर्म मगर क्यों आयेगी!

ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष और "सच्चे राष्ट्रवादियों" की करतूतें

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ समूचे राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के दौरान आर.एस.एस. ने कभी हिस्सा नहीं लिया। उन्हें ब्रिटिश सरकार का कोपभाजन कभी नहीं बनना पड़ा। हेडगेवार एक बार जब जेल गये थे जब वह कांग्रेस के कार्यकर्ता थे। आर.एस.एस. के गठन के बाद 1930 में उनकी दूसरी जेलयात्रा दिखावटी थी, अपनी राष्ट्रभक्ति का एक अदद प्रमाण हासिल करने के लिए। इसे स्वयं हेडगेवार और उनके कई जीवनीकारों ने स्वीकार किया है। इसके बाद से हमेशा ही संघी अंग्रेजों के स्नेह की कामना करते रहे। संघ के कुछ स्वयंसेवकों के बारे में तो यह प्रमाण भी उपलब्ध है कि उन्होंने अपनी चमड़ी बचाने के लिए अंग्रेजों की मुखबिरी तक की। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान 1931 में जब तमाम नौजवानों, स्त्रियों और पुरुषों पर लाठियां बरस रही थीं, वे जेलों में ठूंसे जा रहे थे तो संघ के प्रतापी कार्यकर्ता शाखाओं में लाठियां भांजते हुए हिन्दू राष्ट्र हासिल करने के लिए पौरुष जगा रहे थे। जब अंग्रेजी राज के खिलाफ युवाओं की कुर्बानियों से उद्वेलित होकर संघ के कुछ कार्यर्ताओं ने गुरूजी से आन्दोलन में शामिल होने की अनुमति मांगी तो बेमन से उन्होंने कहा कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन में शामिल होना संघ की नीति तो नहीं है पर यदि स्वयंसेवक स्वेच्छा से इसमें शामिल होना चाहता है तो उसे रोका भी नहीं जायेगा।

दरअसल, अंग्रेजी राज के खिलाफ संघर्ष के दौरान संघी एक दिवास्वप्न देख रहे थे। वह समझते रहे कि जिस प्रकार इटली में सोशल डेमोक्रेटों की गद्दारी से हताश श्रमिकों पर फासीवादियों के हमलों की पृष्ठभूमि में इटली के राजा, बुर्जुआ सरकार और सेना ने साजिश करके 30 अक्टूबर 1922 को मुसोलिनी के हाथ में सत्ता सौंप दी थी, उसी प्रकार इतिहास के किसी संकटपूर्ण और जनतांत्रिक ताकतों की विफलता से उत्पन्न स्थिति के मुकाम पर उनका भी भाग्योदय होगा। लेकिन हतभाग्य!

उनका यह स्वप्न साकार न हो सका। 15 अगस्त 1947 को जब राजनीतिक सत्ता पर कांग्रेसी काबिज हो गये तो गोलवलकर ने अपनी हताशा प्रकट करते हुए कहा: 15 अगस्त 1947 हिन्दू राष्ट्र के प्रति ऐसा "विश्वासघात" है जिसका कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। "इसी विश्वासघात का परिणाम यह हुआ कि 1947 में मुसलमानों के हाथों हिन्दू मात खा गये।" (गोलवलकर, बंच ऑफ थॉट्स, विक्रम प्रकाशन, पृष्ठ 152)

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान इन देशद्रोही अंग्रेजपरस्त हरकतों के बाद भी तुर्रा यह कि संघ परिवार वाले स्वयं को 'सच्चे राष्ट्रवादी' सच्चे देशभक्त' साबित करने के लिए झूठों

(पेज 40 पर जारी)

नकली राष्ट्रवादियों की चंद झलकियां

(पेज 18 से आगे)

का पहाड़ खड़ा करते रहे हैं। एक झूठ का खासतौर पर बड़े जोर- शोर से प्रचार किया जाता है कि 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के समय कम्युनिस्टों ने गद्दारी की। सच्चाई यह है कि 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' से विरत रहने का फैसला फासीवाद विरोधी संघर्ष की रणनीति की गलत समझ से लिया गया एक तात्कालिक फैसला था। तत्कालीन अविभाजित कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व ने यह गलत समझ बनायी कि चूंकि फासीवाद विरोधी संयुक्त मोर्चे में इटली-जर्मनी की धुरी के खिलाफ ब्रिटेन समाजवादी रूस के साथ मित्र देशों के मोर्चे में शामिल है, इसलिए अंग्रेजीराज के खिलाफ संघर्ष तेज करना फासीवादी विरोधी लड़ाई को कमजोर करेगा। निश्चित रूप से यह भयंकर भूल थी। इसे ही गद्दारी कहकर आर.एस.एस. वाले प्रचारित करते हैं। लेकिन वे इन तथ्यों को जनबूझकर नजरअन्दाज कर देते हैं कि 1942 के पहले और उसके ठीक बाद कम्युनिस्टों की क्या भूमिका थी। 1942 से पहले कम्युनिस्ट साम्राज्य विरोधी संघर्ष में मजदूरों , किसानों, बुद्धिजीवियों, छात्रों, जनता के विभिन्न वर्गों की अगुवाई कर रहे थे, कुर्बानियां दे रहे थे। 1942 के बाद 1946 के जनउभारों के समय तक कम्युनिस्ट अग्रिम मोर्चों पर थे। यहां तक कि 1942 में भी पार्टी की गलत रणनीति के बावजूद ग्रासरूट स्तर पर कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारियां हो रही थीं। उस समय संघियों तुम कहां थे? तुम तो इन उथल-पुथल भरे दौरों में भी शाखाओं में लाठियां भांजते हुए अपनी शक्ति का संचय कर रहे थे। दरअसल, जिस तरह चोर अपनी चोरी छुपाने के लिए चिल्ला-चिल्लाकर दूसरों को चोर-चोर कहकर पकड़ने के लिए ललकारता है, उसी तरह का आचरण संघी आज तक करते चले आ रहे है। अपनी गद्दारी छुपाने के लिए बिचारे यह न करें तो स्वयम्भू देशभक्त बने कैसे घूमेंगे भला!

बात बदलने-बात छिपाने के उस्ताद

बात बदलने-छिपाने में संघ परिवार का कोई सानी नहीं है। उसके अठारह मुंह में अठारह जीभें हैं और वे सभी अलग-अलग बातें बोलते नजर आते हैं। गोलवलकर के बाद आर.एस.एस. ने कभी लिखित रूप से अपने मंसूबों को प्रकट नहीं किया। क्योंकि चोर रंगे हाथों पकड़ लिया गया था। तब से वह वाचिक परम्परा पर ही सबसे अधिक भरोसा करती है, इसी बात बदलने-छिपाने के सुभीते के चलते।

1951 से 1967 तक आर.एस.एस. ने कभी नहीं माना कि जनसंघ उसकी राजनीतिक शाखा है। पर 1968 में उसने मान लिया। वह भी लिखित रूप में। 7 जनवरी के 'आर्गनाइजर' ने लिखा: "जहां तक भारतीय जनसंघ का मामला है, उस पर आर.एस.एस. के नियंत्रण का ही प्रश्न नहीं है, आर.एस.एस. ही उसे आदर्श कार्यकर्ता प्रदान करता है। आर.एस.एस. के इस दोहरे समर्थन के बिना जनसंघ सिर्फ एक नाम रह जायेगा संगठन नहीं।" वह आज भी ए.बी.वी.पी, विहिप, बजरंग दल से लेकर देशभर में फैले अपने पांच दर्जन अन्य आनुषंगिक संगठनों से अपनी सम्बद्धता से इनकार करता है जबकि दुनिया जानती है कि ये सभी आर.एस.एस. के 'हिन्दू राष्ट्रवाद' के एजेण्डे को ही अलग-अलग ढंग से अपने-अपने क्षेत्रों में लागू कर रहे हैं।

श्यामा प्रसाद मुखर्जी के बाद जनसंघ की बागडोर संभालने वाले दीनदयाल उपाध्याय ने 'एकात्म मानववाद' की थीसिस रखी। जनता पार्टी टूटने के बाद जनसंघ का जब भारतीय जनता पार्टी के रूप में नया अवतार हुआ तो उसने सबसे पहले 'गांधीवादी समाजवाद' की खिचड़ी पकानी शुरू की, लेकिन फिर जल्दी ही उसने हांडी चूल्हे से उतारकर राममन्दिर मुद्दे को उठाया। फिर उसने कई बार पलटी खायी। कभी कहा कि राममन्दिर मुद्दा है, कभी कहा नहीं है। उसका एक मुंह 'हिन्दुत्ववाद' की गुहार लगता है तो दूसरा मुंह 'हिन्दू राष्ट्रवाद' की टेर लगाता है। कभी कहा जाता है कि दोनों एक ही हैं, कभी यह कि दोनों अलग-अलग हैं। आडवाणी का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद प्रेम बीच-बीच में जाग उठता है, फिर बीच-बीच में चुप लगा जाते हैं। वाजपेयी जी का क्या कहा जाये? बातों को बदलने और घुमाने के फ़न के सबसे बड़े फनकार तो वहीं हैं। गुजरात की घटनाओं पर उनके एक दूसरे से उलट कितने बयान आये, उनकी गिनती करना भी मुश्किल है। विदेश में जाने पर वे शर्मसार होते हैं तो देश में गर्व महसूस होने लगता हैं कभी मोदी को राजधर्म निभाने की नसीहत दे आते और उनकी दुबारा ताजपोशी पर आशीर्वाद भी दे आते हैं। उन्हें बाबरी मस्जिद शहादत से कभी देश के माथे पर कलंक लगा नजर आ जाता है तो कभी यह 'राष्ट्रीय भावनाओं का प्रकटीकरण' बन जाता है। लम्बे समय तक उदारवादी मुखौटा लगाये रखने के बाद उसे फेंककर अपना असली स्वयंसेवक वाला चेहरा दिखा देते हैं। इतना ही नहीं वाजपेयी एक ही सांस में कई बातें बोलने की कला में भी माहिर हो चुके हैं।

रावण के दस मुख थे लेकिन वह सभी मुखों से एक साथ अट्टहास करता है। लेकिन संघ परिवार के अलग-अलग मुख और मुखौटे अलग-अलग बोलते हैं कोई अट्टहास करता है, कोई हुंकार भरता है, कोई कविता उचारता है, कोई स्वदेशी हांकता है तो कोई विनिवेश राग गाता है- संघ अनन्त, संघ कथा अनन्ता!

संघ परिवार वाले अपने गुरूजी के प्रति भी निष्ठावान नहीं हैं। पर उनसे नाता भी नहीं तोड़ते। गुरूजी की किताब तक दबा गये पर उन्हें खारिज भी नहीं करते। एक बार जब किताब की ज्यादा छीछालेदर हो गयी तो एक कृतघ्न स्वयंसेवक ने यहां तक कह दिया कि गुरूजी ने कोई मौलिक किताब हीं नहीं लिखी। कहाकि 'वी ऑर अवर नेशनहुड' तो सावरकर की राष्ट्रमीमांसा का अनुवाद है।

संघियों द्वारा बात बदलने-छिपाने, झूठ बोलने, वैचारिक कलाबाजियां खाने के इतने उदाहरण हैं कि एक पूरा ग्रन्थ ही तैयार हो सकता है, पर फिलहाल बस।

इतिहास के साथ दुराचार

देश के इतिहास के साथ दुराचार करने की संघ परिवार की गौरवशाली परम्परा रही है। प्राचीन भारत के इतिहास से दुराचार की कुछ बानगी हम ऊपर दे चुके हैं। पहले ही अनेक बानगियां और भी मौजूद हैं पर माननीय जोशी जी के नेतृत्व में आजकल जो दुराचार चल रहा है उसकी बानगियां रोज ही अखबारों में निकल रही हैं। यह दुराचार सिर्फ प्राचीन भारत ही नहीं, मध्यकाल और आधुनिक काल के इतिहास के साथ भी हो रहा है।

तमाम ऐतिहासिक प्रमाणों, पुरातात्विक साक्ष्यों, दुनिया में ख्यातिप्राप्त इतिहास के अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखित आधिकारिक इतिहास को फर्जी इतिहासकारों द्वारा "संशोधित" करवाया जा रहा है। अब यही कलुषित इतिहास नयी पीढ़ी को पढ़ाया जायेगा। युवा पीढ़ी के विवेक को कुण्ठित कर उसकी तर्कणा को कमजोर कर, उसके मानस को खतरनाक साम्प्रदायिक विद्वेष से भर देने का यह अभियान भविष्य के लिए एक खतरनाक चुनौती बनने जा रहा है। यह युवा वर्ग की परिवर्तनकामी ऊर्जा और सर्जनात्मकता को क्षरित कर उन्हें एक अन्ध आस्थावादी उन्मादी भीड़ में बदल देने की तैयारी है। इसके कारगर प्रतिकार के लिए प्रगतिशील ताकतों को गंभीरता से सोचना होगा और ठोस कार्यक्रम बनाने होंगे।

नकली राष्ट्रवादियों की असली जन्मकुण्डली की ये चन्द झलकियां भर हैं। क्या इतना पर्याप्त नहीं है? ●